इमाम हुसैन अलैहिस्सलाम

प्रोफेसर सैय्यिद एहतिशाम हुसैन रिज़वी साहब माहुली

कर्बला की घटना की श्रेष्ठतम को अपने समय के प्रत्येक दार्शनिक, साहित्यकार, कवि तथा इतिहास लेखकों ने सराहा है। प्रत्येक दृष्टि में इसकी प्रधानता और श्रेष्ठता का रहस्य केवल अत्याचार के मुक़ाबले में धर्म और सत्य का झण्डा ऊँचा करने में नहीं रहा है। एवं इमाम हुसैन का असाधारण व्यक्तित्व प्रकट करने में रहा है। जहाँ तक कर्बला में घटित घटनाओं का सम्बन्ध है तो बहुधा उन्हें अदभुत नहीं कहा जा सकता, क्योंकि अगर एक रूप से देखा जाए तो इतिहास में भूख और प्यास में प्राण तज देने वाले भी मिल जायेंगे तथा वह स्त्रियाँ भी जिन्होंने कारावास के कष्ट सहन किये एवं वह बालक भी जिनकी पाप हीन हत्या की गई। ऐसे युवक भी मिलेंगे जिन्होंने अपने माता–पिता के सम्मुख अपने प्राण तज दिये।

सम्पूर्णतः इस घटना में उच्च उद्देश्य, गम्भीर स्वभाव तथा धर्म पालन व दृढ़ सत्यता जैसे वह उदाहरण मिलेंगे जिनकी समानता असम्भव है।

इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि इसमें इमाम हुसैन (अ0) एक केन्द्र–बिन्दु के समान थे, उन्हीं के चरित्र से प्रत्येक चरित्र को धैर्य मिलता था, चाहे वह मित्रों का हो अथवा उस समय पर उपस्थित हो जाने वालों का, चाहे बालकों का हो, चाहे स्त्रियों का। इमाम हुसैन ने कर्बला की घटना को अमिट बनाने के लिये जो तरीक़ा अपनाया था, अगर उसे मनोवैज्ञानिक रूपों से जाँचा और परखा जाए तो बहुत से लाभदायक और आवश्यक परिणाम ग्रहण किये जा सकते हैं।

इमाम हुसैन की आयु कर्बला में 57 वर्ष की थी। इस आयु में विचार जटिल हो जाते हैं, इच्छाओं में दृढ़ता आ जाती है। मनुष्य जो बात करना चाहता है, तो सोच–विचार कर क़दम उठाता है। इस आयु में अगर कोई रण क्षेत्र में प्राण तजने आता है तो जानकर आता है कि क्या करने जा रहा है।

यह आत्म हत्या नहीं होती, वास्तव में मस्तिष्क और मन एक साथ चिन्तित होते हैं, अनुभवों और मस्तिष्क की शक्तियों का एक साथ कार्य होता है। इस आयु का मनुष्य केवल विचारधारा के प्रवाह में बहकर कार्य नहीं करता।

एक साधारण मनुष्य भी 57 वर्ष की आयु में दृढ़ विचारों वाला माना जाता है। हुसैन ने नयन मूँद कर 57 वर्ष की अवधि व्यतीत नहीं की थी, बल्कि वह ऐसी घटनाओं से भरे हुए थे। न केवल अरब के इतिहास ने वरन संसार के इतिहास ने उनके सम्मुख पलटे खाये थे। हुसैन (अ0) की आयु 7 वर्ष की थी जब मुहम्मद साहब (नाना) का देहान्त हुआ। वह प्रत्येक ज्ञान प्राप्त करने की आयु थी। अगर आज किसी मनोवैज्ञनिक से प्रश्न करें कि बाल्यावस्ता में चरित्र–निर्माण किस प्रकार होता है तो वह आपको बतायेगा कि 7 वर्ष की आयु ऐसे नक़्श अपने में बिठा लेती है जो साधारणत्या युवक नहीं देख पाते। 7 वर्ष के बने हुए नक़्श मृत्यु समय तक बाक़ी रहते हैं।

मुहम्मद साहब ने भरपूर निश्चय के पश्चात यह कहा था किः–

''हुसैन मुझ से है और मैं हुसैन से हूँ।''

हुसैन इन शब्दों को नहीं भूले, लेकिन कर्बला में जो अत्याचारी आये थे वह भूल गए थे।

जो तीरों से आक्रमण कर रहे थे। जिन्होंने

सरिताओं पर पहरे बिठा दिये थे। जो सम्पूर्ण–कुटुम्ब को नष्ट कर देने का निश्चय कर के आये थे। वह भूलगये थे कि हुसैन ने 7 वर्ष की आयु में जो आवाज़ सुनी है, जो दृश्य देखे थे उन्हें अपने मस्तिष्क में बिठा लिया। आज मुहम्मद (नाना) का देहान्त हुआ उस समय को नहीं भूले जब अली (पिता) ने प्राण तजे, उस समय को नहीं भूले। जब फ़ातिमा (माता) की मृत्यु हुई, उस समय की याद भी थी, जब उनके भाई हसन ने संसार छोड़ा, वह दुखित दृश्य भी सम्मुख था। बस अवसर की प्रतीक्षा थी कि कौन सा समय आयेगा कि जब अपने नाना मुहम्मद (स0) की इस बात को सिद्ध कर दिखाऊँगा कि ''हुसैन मुझसे है'' यह पचास वर्ष के प्रयत्न का फल था जो हुसैन ने कर्बला के रणक्षेत्र में पूरा करके दिखला दिया।

कर्बला की घटना से पूर्व भी संसार के सम्मुख हुसैन एक आदरणीय मानव थे। उन्होंने मुआविया को पत्र में लिखा था कि मेरे लिये यह क्या कम है कि मैं अली का बेटा (पुत्र) हूँ हुसैन ने अपने जीवन में बाल्यावस्था से कष्ट–सहन करना सीखा था। उनके नाना वह थे कि भूख से व्याकुल होकर घर में आते थे कि बेटी (पुत्री) कुछ प्रबन्ध करे।

उनकी माता वह थीं कि चक्की पीस कर जीविका–पालन करती और तीन–तीन दिन तक फाक़े करतीं। हुसैन ने ऐसे वातावरण में शिक्षा ग्रहण की थी।

सांसारिक दुखों को झेला था। विभिन्न परिस्थितियों को समझा था। वह ऐसे भोग–विलास के आदी नहीं थे। जिसको प्राप्त करने में उनको रुकावटें पड़ती परन्तु उनकी दृष्टि में वह उद्देश्य था जिस तक पहुँचना सुगम न था।

वह लक्ष्य उन्हें नाना के प्रेम ने दिखलाया था। उन्के सम्मुख तो केवल एक प्रश्न था कि मुहम्मद (स0) ने मुझ पर जो ये भरोसा किया था कि अगर इस्लाम पर संकट का समय आयेगा तो मैं रक्षा करूँगा। अतः उस भरोसे को पूर्ण कर दिखलाना उनके लिए अनिवार्य हो गया था। यह वाक्य बराबर प्रयोग होता रहता है कि–

''इस्लाम ख़तरे में है''

इन्सान कभी इससे अधिक संकट में नहीं रहा जैसे सन् इकसठ हिजरी में था।

यूँ तो तातारियों ने मुसलमानों पर बड़े अत्याचार किये। बग़दाद के राज्य–पाट को उलट दिया गया, इस्पेन से मुसलमान निकाल दिये गये। मुसलमानों पर विभिन्न कालों में विपतायें आईं मगर यह बात इसके पश्चात की है। जब इस्लाम संभल चुका था। इस्लाम का धारा जारी हो चुका था। जब एक ओर इस्लाम को रोका जाता था तो दूसरी ओर बढ़ जाता था किन्तु हुसैन ने इस्लाम की रक्षा उस समय की जब इसका धरा बहुत पतला था, जिस पर यज़ीद का बन्धन बाँध देना वास्वत में इस्लाम को समाप्त कर देना था। हुसैन (अ0) के सम्मुख इसके अतिरिक्त और कुछ न था कि यज़ीद इस धारे को रोक न सके इनको यह चिन्ता पचास (50) वर्ष तक रही कि जब इस्लाम पर सबसे कठिन समय आये तो वह इसको बचा लें।

'सिफ्फीन' के रणक्षेत्र में अली के सर पर बोझ था हुसैन ने (अ0) कोई राय नहीं दी, इमाम हसन (अ0) ने जब सन्धि करनी चाही तो उन्होंने उनका हाथ नहीं रोका क्योंकि उन्हें ज्ञान था कि हमें और समय प्राप्त होगा, हमें और समय तन और प्राण की बाज़ी लगानी पड़ेगी उस समय जो इस्लाम को बचा सकें बचा लें जैसा उनके बलिदानों से बच सके वह बचा लें, हमारी समझ में आयेगा हम रक्षा करेंगे। अली (अ0) ने बड़ी–बड़ी सेनायें एकत्रित करके इस्लाम की रक्षा का प्रयत्न किया, हुसैन (अ0) के लिए संघर्ष उचित न था या सन्धि का उन्होंने दूसरा तरीक़ा अपनाया। महान सेनाओं का मुक़ाबला छोटी–छोटी फौजों ने किया। ऐसी

घटनाएँ इतिहास में बहुत सी मिल सकती हैं। बहुत से सूरमाओं ने मुक़ाबले किये और आत्म–बलिदान किया, अपना सर हथेली पर रक्खा, और आग में कूद पड़े बहुत से मनुष्य अपने रक्त में नहाये हैं। इसका इतिहास गवाह है, परन्तु कर्बला में कुछ ऐसी बात है कि आज भी वह घटना ताज़ी है।

आप बहुत सी घटनाओं को भुल सकते हैं परन्तु कर्बला को नहीं भुला सकते।

हुसैन (अ0) इसको ऐसा तेजस्वी बनाना चाहते थे कि आगामी भविष्य इसे भुला न सके। उन्होंने इसके लिए कौन सा प्रबन्ध किया।

इतिहास गवाह है कि जब उमैय्या के शासकों के हाथ में राज्य की बागडोर आयी तो उन्होंने बनी हाशिम और उनके मित्रों की हत्या करना चाही वह ये करते थे कि उन लोगों को जो बनी हाशिम का अर्थात् उस क्रान्तिकारी शक्ति का साथ देने वाले थे, जिसे इस्लाम कहा जाता था और जो सांसारिक बुराइयों को समाप्त करने आया था, कभी तलवार और कभी विष देकर समाप्त कर देते थे विभिन्न प्रकार से कष्ट करने का प्रयत्न होता था बनी उमैय्या का अत्यन्त अद्भुत तरीक़ा यह था कि प्रत्येक मनुष्य की अलग–अलग हत्या की जाए, किसी को विष दिया जाय कि संसार को ख़बर न होने पाये, किसी की हत्या छिपकर की जाय। जब अली मुर्तज़ा (अ0) तलवार से मारे गये तो वास्तविक क़ातिलों का पता न चल सका, इमाम हसन (अ0) को विष दिया गया। विष देने वाले छिपे रहे। इसके पूर्व भी ऐसी ही बहुत सी घटनाएँ हो चुकी थीं। उदाहरणतयः अबूजरे ग़फ़्फ़ारी 'रबज़ा' में शहीद किये गये वास्तव में इन घटनाओं से कोई सांवभौमिक प्रभाव उत्पन्न नहीं हो सकता। यहाँ तक कि इमाम हुसैनने उमवी चालबाज़ियों का भांडा फोड़ दिया। उन्होंने यह निश्चय किया कि हमारी तादाद कम हो, परन्तु यह रक्त–बलिदान इस प्रकार हो कि संसार उसे भुला न सके। एक–एक मनुष्य को मार लेना कठिन न था। उसकी कोई प्रधानता भी नहीं थी परन्तु बहत्तर मनुष्य सख़्त गर्मी में भूखे–प्यासे शहीद हुए। जिनमें वृद्ध भी, युवक और बालक भी मौजूद हों जिन पर रोने वाली स्त्रियाँ भी उपस्थित हों तो उसे छुपाया नहीं जा सकता यहीवह श्रेष्ठता है जिससे कर्बला की घटना अद्भुत हो जाती है और उसे भुलाना असम्भव हो जाता है। जो इस याद को मिटाने का भरसक प्रयत्न करने में संलग्न है वह एक चुभन सी महसूस कर रहे हैं।

हुसैन जिस प्रकार इस घटना को संसार के सम्मुख लाना चाहते थे, उस प्रयत्न में सफल हो गये। जिन पर उनको भरोसा नहीं था उनको अलग किया गया। उन लोगों को खोजकर बुलाया गया जिन पर भरोसा था।

ऐसे साथी लाये कि जब तक जीवित रहे मृत्यु के स्वागत के लिए व्याकुल रहे। जब मरने लगे तो यह कहकर मरे ''हुसैन से ग़ाफ़िल न रहना।''

संसार का दुख नहीं, किसी बात की इच्छा नहीं, केवल यह चिन्ता थी कि मन में निर्बलता न आने पाये।

मृत्यु के समय भी एक दूसरे को धैर्य देते चले जाते थे वह कष्ट के समय भी संतोषजनक मुक़ाबला करते हुए आगे बढ़ते गये, वह तीरों के मुक़ाबले में अपना सीना प्रस्तुत करते थे ताकि संसार समझ सके कि मुक़ाबला किस प्रकार किया जाता है।

इस चरित्र ने कर्बला की घटना को बड़ा तेजस्वी बना दिया। इसकी श्रेष्ठता और प्रधानता में बढ़ावा दिया।

हम दृष्टि डालते हैं तो कोई भी घटना इससे महान नहीं दिखाई पड़ती जिसकी श्रेष्ठता के सम्मुख हमारे मस्तक झुक जाएँ। □□□